



भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के उन्नयन में दयानन्द सरस्वती की भूमिका

प्रतीककुमार दशरथभाई पटेल
शोध छात्र,पेसिफिक यूनिवर्सिटी, उदयपुर

आर्य समाज आन्दोलन का प्रसार प्रायः पाश्चात्य प्रभावों की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। यह आन्दोलन केवल रूप में ही पुनरुत्थान था न कि तत्वों में। यह स्मरण रहे कि न तो स्वामी दयानन्द ही और न उनके गुरु स्वामी विरजानन्द ही पाश्चात्य शिक्षा से प्रभावित हुए थे। ये दोनों ही शुद्ध वैदिक परम्परा में विश्वास करते थे और उन्होंने "पुनः वेद की ओर चलो" का नारा लगाया। उत्तर वैदिक काल से आज तक सभी अन्य मत मतान्तरों को उन्होंने पाखण्ड अथवा झूठे धर्म की संज्ञा दी।

मूल शंकर (1824-83) जो प्रायः दयानन्द के नाम से जाने जाते हैं, का जन्म 1824 में गुजरात की मोरवी रियासत के निवासी एक ब्राह्मण कुल में हुआ। उनके पिता जो स्वयं वेदों के महान विद्वान थे, उन्होंने उन्हें वैदिक वाङ्मय, न्याय-दर्शन इत्यादि पढ़ाया। दयानन्द की जिज्ञासा ने उन्हें योगाभ्यास इत्यादि करने पर बाध्य किया तथा उन्होंने गृह त्याग दिया। 15 वर्ष तक स्थान-स्थान पर घूमते रहे। 1860 में वे मथुरा पहुंचे और स्वामी विरजानन्द जी से वेदों के शुद्ध अर्थ तथा वैदिक धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा प्राप्त की। 1863 में उन्होंने झूठे धर्मों का खण्डन करने के लिए "पाखण्ड खण्डनी पताका" लहराई। 1875 में उन्होंने बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की जिसका मुख्य उद्देश्य प्राचीन वैदिक धर्म की शुद्ध रूप से पुनः स्थापना करना था। जो झूठे धार्मिक विश्वास तथा सामाजिक कुरीतियां कालान्तर में हिन्दू समाज में आ गई थीं उन्हें उन्होंने जड़ से उखाड़ फेंकने का प्रण किया। 1877 में आय समाज लाहौर की स्थापना हुई जिसके उपरान्त आर्य समाज का अधिक प्रचार हुआ। स्वामी दयानन्द का उद्देश्य था कि भारत को धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय रूप से एक कर दिया जाए। उनकी इच्छा थी कि आर्य धर्म ही देश का समान धर्म हो। उन्हें समकालीन हिन्दू धर्म तथा समाज में अनेक त्रुटियां देखने को मिलीं। उन्होंने इन दोनों क्षेत्रों में जीवनपर्यन्त अनथक कार्य किया।

धार्मिक क्षेत्र में वह मूर्ति पूजा, बहुदेववाद, अवतारवाद, पशुबलि, श्राद्ध, जंत्र, मंत्र तथा तंत्र तथा झूठे कर्मकाण्ड को स्वीकार नहीं करते थे। वह वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते थे और उपनिषद् काल तक के साहित्य को स्वीकार करते थे। शेष को, विशेषकर पुराणों को, जिनमें उपर लिखे विश्वासों का विवरण मिलता है वह मनघड़न्त कथाओं का समुच्चय मानते थे। परन्तु वेद के विषय में भी उनका तर्क यह था कि वेद की भाषा अत्यन्त प्राचीन है। अतएव इसके भाष्य जो समय-समय पर लिखे गए सब सत्य नहीं हैं। अपनी बुद्धि का प्रयोग करो और वैदिक मंत्रों के अर्थों को तर्क की कसौटी पर परखो और तब अपनाओ। वह संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे और उन्होंने स्थान-स्थान पर जाकर कट्टरपंथियों से शास्त्रार्थ किए और सिद्ध किया कि ऊपर लिखे विश्वासों का वेद में कोई आधार नहीं।

उन्होंने अद्वैतवाद को, कि संसार एक माया है, आत्मा - परमात्मा का ही भाग है, उसके अतिरिक्त सब झूठ है, संसार से पलायन ही जीवन का उद्देश्य है, इस दर्शन को उन्होंने शुद्ध वैदिक परम्परा के विपरीत बतलाया। उनके अनुसार प्रकृति सत् है, आत्मा सत् तथा चित् है और परमात्मा सत्चित् और आनन्द है। ये तीनों ही अनादि तथा अनन्त है। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को शाश्वत मानव धर्म (ऋतु) के अनुसार आचरण करके मोक्ष की प्राप्ति करनी चाहिए। इस प्रकार उन्होंने करणात्मक एकत्ववाद को ही नहीं अपितु नियति को भी अस्वीकार कर दिया। बल दिया मानव के कर्म करने पर। उनके अनुसार मानव भाग्य का खिलौना नहीं अपितु अपने भाग्य का निर्माता है। कोई भी कर्मफल से नहीं बच सकता। प्रत्येक व्यक्ति को संसार की कर्मभूमि में कार्य करते हुए मोक्ष की ओर अग्रसर होना होगा, अर्थात् हाथ पर हाथ रख कर न बैठ, कर्मशील बन, जीवन व्यतीत करना होगा। स्वामीजी की इसी शिक्षा को उनकी मृत्यु के वर्षो उपरान्त श्री अरविन्द घोष जैसे कर्मठ व्यक्तियों ने अपनाया और उनकी भूरि भूरि प्रशंसा की। उनका नारा था 'पुनः वेद की ओर चलो' न कि वैदिक काल की ओर।

दयानन्द ने ब्राह्मण पुराहित वर्ग के धार्मिक तथा सामाजिक पक्ष में सर्वोच्चता के दावे को भी चुनौती दी। उन्होंने ब्राह्मणों के इस कथन की, कि वे शेष मनुष्यों तथा ईश्वर के बीच एक मध्यस्थ हैं, खिल्ली उड़ाई। उनके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को वेद के पढ़ने तथा उसे अपने तर्क के अनुसार निर्वचन करने का अधिकार है। सामाजिक क्षेत्र में उन्होंने छुआछुत, जन्मजात जाति, बाल विवाह तथा अन्य बुराइयों पर कुटाराघात किया। भारत के सामाजिक इतिहास

में वह पहले सुधारक थे जिन्होंने शूद्र तथा स्त्री को वेद पढ़ने तथा ऊंची शिक्षा प्राप्त करने, यज्ञोपवीत धारण करने तथा अन्य सभी पक्षों से ऊंची जाति तथा पुरुषों के बराबर के अधिकार प्राप्त करने के लिए आन्दोलन किया। परन्तु सम्भवतः सबसे अधिक कार्य उन्होंने स्त्रियों की स्थिति सुधारने के लिए किया। उनके अनुसार पुत्र तथा पुत्रियां समान हैं। इसी प्रकार बाल विवाह, शाश्वत वैधव्य, विधवा को हेय मानना, परदा, दहेज, बहु-विवाह, वेत्यागमन, देवदासियां इत्यादि ऐसी कोई भी सामाजिक बुराई नहीं थी जिसे उन्होंने स्वीकार किया हो। वे वर्ण व्यवस्था जन्म से नहीं मानते थे कर्म से मानते थे, अर्थात् केवल व्यवसाय के अनुसार कोई व्यक्ति ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र हो सकता है, परन्तु ये चारों वर्ण समान हैं और इनमें कोई अस्पृश्य नहीं। इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने हिन्दू समाज में समानता की उस भावना को जाग्रत किया जो आज हमें अपने संविधान में देखने को मिलती है। सम्भवतः भारत के ज्ञात इतिहास में हिन्दू धर्म तथा समाज में इतना मूलभूत, दूरगामी, व्यापक तथा प्रभावशाली सुधारक अभी तक कोई नहीं हुआ। सम्भवतः अस्पृश्यता का त्याग तथा स्त्री को पुरुष के बराबर अधिकार जो हमारे संविधान का अंग है, उन्हीं के उपदेशों का परिणाम है।

उनके सभी विचार उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'सत्यार्थ प्रकाश' में वर्णित हैं। ब्रह्मसमाज तथा थियोसोफिकल सभा पाश्चात्य विद्या पढ़े लोगों को बहुत भाती थी। स्वामी दयानन्द की शिक्षा की मुख्य विशेषता यह थी कि उसमें उन्होंने पाश्चात्य दर्शन, शिक्षा तथा समाज से कुछ भी नहीं लिया। उन्होंने तो केवल यह कहा कि वेद और उपनिषद् से परे कुछ नहीं और जिन जिन रीति रिवाजों, परम्पराओं, कर्मकाण्ड अथवा सामाजिक बुराइयों की वेद में अनुमति नहीं, वे सभी त्याज्य हैं।

उस समय तक, ईसाई, मुस्लिम, सिख धर्म प्रचारक हिन्दू धर्म की कुरीतियों तथा झूठे विवासों की खिल्ली उड़ाते थे। स्वामी दयानन्द ने उनके धर्मों में भी त्रुटियां निकालीं और स्थान स्थान पर शास्त्रार्थ कर प्राचीन कट्टरपंथियों तथा अन्य धर्म प्रचारकों को परास्त किया। फलस्वरूप हिन्दू धर्म के अनुयायियों में एक नया आत्म विवास, आत्म परीक्षण तथा आत्मगुद्धि (अर्थात् हिन्दू धर्म से झूठी परम्पराओं को निकालने) की भावना जागी। कुछ लोगों ने उनके इन विचारों को असहिष्णुता तथा तत्सीमित भावना का प्रतीक बताया है परन्तु वास्तव में दयानन्द की सार्वभौमिकता और उदारचित भावना प्राचीन हिन्दू धर्म की उदारवादी परम्पराओं के पूर्णतया अनुकूल थी। यद्यपि इस आन्दोलन का बाह्य स्वरूप वैदिक परम्पराओं की पुनः स्थापना करता था परन्तु वस्तुतः आर्य समाज ने आधुनिक ज्ञान तथा तर्क को अपनाया।

आर्य समाज के कार्य का सब से अधिक प्रभाव विद्या तथा सामाजिक सुधार तथा सेवा के क्षेत्र में देखने को मिला। आर्य समाज के सामाजिक विचारों में अन्य बातों के अतिरिक्त जिन पर बल दिया गया वे थीं, एक ईश्वर का पितृत्व तथा सभी मनुष्यों का भ्रातृत्ववाद, स्त्री – पुरुषों की समानता, मनुष्यों तथा जातियों के बीच पूर्ण न्याय तथा निष्पक्षता, तथा प्रेम तथा दान की भावना। आर्य समाज ने शिक्षा तथा ज्ञान के प्रसार पर बहुत बल दिया। उनके अनुयायियों ने विद्या के प्रसार तथा अन्धकार को समाप्त करने में विशेष कार्य किया। उनकी मृत्यु के पश्चात् 1886 में आरम्भ की गई दयानन्द ऐंग्लो – वैदिक संस्थाएं शीघ्र ही देश के कोने कोने में फैल गईं। स्वामीजी के अनुयायी रुढ़िवादी तथा प्रतिक्रियावादी नहीं थे। उन्होंने अंग्रेजी भाषा तथा ज्ञान को भी अपनाया अर्थात् प्राच्य तथा पाश्चात्य ज्ञान का सर्वोत्तम समन्वय इनमें मिलता है। इन शिक्षा संस्थाओं को भी आर्य समाज ने रुढ़िवाद तथा झूठे विवासों से निकलने के एक साधन के रूप में प्रयोग किया। 1892 – 93 में आर्य समाज के दो दल हो गए। एक पाश्चात्य शिक्षा का विरोधी था। उन्होंने 1902 में हरिद्वार में एक गुरुकुल स्थापित कर लिया जहां प्राचीन वैदिक शिक्षा प्राचीन पद्धति से दी जाती थी और उसी के नमूने पर कई अन्य स्थानों में गुरुकुल बनाए गए।

आर्य समाज के सिद्धान्त तथा नियम सब से पूर्व बम्बई में गठित किए गए। पुनः उनको लाहौर में 1877 में सम्पादित किया गया तथा निश्चित रूप दिया गया और वे आज तक परिवर्तित नहीं किए गए। नियम से हैं :-

- 1) सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।
- 2) ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार सर्वव्यक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी चाहिए।
- 3) वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। वेद का पढ़ना पढ़ाना और सुनना सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।
- 4) सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।
- 5) सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।
- 6) संसार का उपकार करना आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

- 7) सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार यथायोग्य बरतना चाहिए।
- 8) अविद्या का नाश और विद्या को वृद्धि करनी चाहिए।
- 9) प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए। किन्तु सब की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।
- 10) सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए, और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र है।

इतना ही नहीं आर्य समाज ने शुद्धि आन्दोलन भी आरम्भ किया जिसके अन्तर्गत लोगों को अन्य धर्मों से हिन्दू धर्म में लाने का प्रयत्न किया गया। इसके अतिरिक्त, लगभग 60 हजार मलकाने राजपूतों को और उन हिन्दुओं को, जिन्हें माण्डलिक विद्रोह के दिनों में (1923) अथवा 1947 में भारत विभाजन के समय बलपूर्वक मुसलमान बना लिया गया था, उन्हें पुनः हिन्दू धर्म में लौटने का अवसर दिया। स्वामी दयानन्द के आर्थिक विचारों में स्वदेशी का विधान महत्व था। राजनीतिक क्षेत्र में वह कहते थे कि बुरे बुरा देशी राज्य अच्छे से अच्छे विदेशी राज्य से अच्छा है अर्थात् उनकी शिक्षा के फलस्वरूप उनके अनुयायियों में स्वदेशी और देशभक्ति की भावना ने आर्य समाज को सत्य ही "भारतीय अजाति का जन्मदाता" कहा जाता है। महात्मा हंसराज, पण्डित गुरुदत्त, लाला लाजपत राय और स्वामी श्रद्धानन्द इसके विद्वान् कार्यकर्ताओं में थे। आर्य समाज का प्रचार पंजाब, उत्तरप्रदेश, राजस्थान और बिहार में विद्वान् रूप से हुआ।

1 महर्षि दयानन्द के "सत्यार्थ प्रकाश" में प्रतिबिम्बित शिक्षा प्रणाली—महर्षि दयानन्द के मत में भारत वर्ष—नाम की अवधारणा

यह आर्यवर्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है। इसीलिये इस भूमि का नाम सुवर्णभूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसीलिये सृष्टि की आदि में आर्य लोग इसी देश में आकर बसे। इसलिये हम सृष्टिविषय में कह आये हैं कि आर्य नाम उत्तम पुरुषों का है और आर्यों से भिन्न मनुष्यों का नाम दस्यु है। जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है परन्तु आर्यवर्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हा जाते हैं। आर्यों का सार्वभौम चक्रवर्ती अर्थात् भूगोल में सर्वोपरि एकमात्र राज्य था। अन्य देश में माण्डलिक अर्थात् छोटे-छोटे राजा रहते थे क्योंकि कौरव पांडव पर्यन्त यहाँ के राज्य और राजशासन में सब भूगोल के सब राजा और प्रजा चले थे क्योंकि यह मनुस्मृति जो सृष्टि की आदि में हुई है उसका प्रमाण है। इसी आर्यवर्त देश में उत्पन्न हुए ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों से भूगोल के मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र, दस्यु, म्लेच्छ आदि सब अपने-अपने योग्य विद्या चरित्रों की शिक्षा और विद्याभ्यास करें और महाराजा युधिष्ठिर जी के राजसूय यज्ञ और महाभारत युद्धपर्यन्त यहाँ के राज्याधीन सब राज्य थे।

स्वायंभुव राजा से लेकर पांडवपर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़ कर नष्ट हो गये क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता। और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है तब आलस्य, पुरुषार्थरहितता; ईर्ष्या द्वेष, विषयासक्ति और प्रमाद बढ़ता है। इससे देश में विद्या सुशिक्षा नष्ट हो कर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं। जैसे कि मद्य मांस सेवन, बाल्यावस्था में विवाह और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं। और जब युद्धविभाग में युद्धविद्याकौशल और सेना इतनी बढ़े कि जिसका सामना करने वाला भूगोल में दूसरा न हो तब उन लोगों में पक्षपात अभिमान बढ़ कर अन्याय बढ़ जाता है। जब ये दोष हो जाते हैं तब आपस में विरोध हो कर अथवा उनसे अधिक दूसरे छोटे कुलों में से कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है कि उनका पराजय करने में समर्थ होवे। जैसे मुसलमानों की बादशाही के सामने शिवा जी, गोविन्दसिंह जी ने खड़े होकर मुसलमानों के राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया।

प्रमाणों से सिद्ध है कि सृष्टि से लेकर महाभारतपर्यन्त चक्रवर्ती सार्वभौम राजा आर्यकुल में ही हुए थे। अब इनके संतानों का अभाग्योदय होने से राजभ्रष्ट होकर विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहे हैं। जैसे यहाँ सुद्युम्न, भूरिद्युम्न, इन्द्रद्युम्न, कुवलयाश्व, यौवनाश्व, वदध्वश्व, अश्वपि, शशविन्दु, हरिश्चन्द्र, अम्बरीष, ननक्तु, सर्याति, ययाति, अनरण्य, अक्षसेन, मरुत्त और भरत सार्वभौम सब भूमि में प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजाओं के नाम लिखे हैं वैसे स्वायम्भुवादि चक्रवर्ती राजाओं के नाम स्पष्ट मनुस्मृति, महाभारतादि ग्रन्थों में लिखे हैं। इसको मिथ्या करना अज्ञानी और पक्षपातियों का काम है।

प्रश्न — जो आग्नेयास्त्र आदि विद्या लिखी हैं वे सत्य हैं वा नहीं ? और तोप तथा बन्दूक तो उस समय में थीं वा नहीं?

उत्तर — यह बात सच्ची है। ये शस्त्र भी थे, क्योंकि पदार्थविद्या से इन सब बातों का सम्भव है।

प्रश्न – क्या ये देवताओं के मन्त्रों से सिद्ध होते थे ?

उत्तर – नहीं। ये सब बातें जिनसे अस्त्र शस्त्रों को सिद्ध करते थे वे 'मन्त्र' अर्थात् विचार से सिद्ध करते और चलाते थे। और जो मन्त्र अर्थात् शब्दमय होता है उससे कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं होता। और जो कोई कहे कि मन्त्र से अग्नि उत्पन्न होता है तो वह मन्त्र के जप करने वाले के हृदय और जिज्ञा को भस्म कर देवे। मारने जाय शत्रु को और मर रहे आप। इसलिये मन्त्र नाम है विचार का जैसा 'राजमन्त्री' अर्थात् राजकर्मों का विचार करने वाला कहाता है, वैसा मन्त्र अर्थात् विचार से सब सृष्टि के पदार्थों का प्रथम ज्ञान और पश्चात् क्रिया करने से अनेक प्रकार के पदार्थ और क्रियाकौशल उत्पन्न होते हैं।

जितनी विद्या भूगोल में फैली है वह सब आर्यावर्त देश से मिश्र वालों, उनसे यूनानी, उनसे रूम और उनसे यूरोप देश में, उनसे अमेरिका आदि देशों में फैली है। अब तक जितना प्रचार संस्कृत विद्या का आर्यावर्त देश में है उतना किसी अन्य देश में नहीं। जो लोग कहते हैं कि जर्मनी देश में संस्कृत विद्या का बहुत प्रचार है और जितना संस्कृत मोक्षमूलर साहब पढ़े हैं उतना कोई नहीं पढ़ा यह बात कहने मात्र है क्योंकि 'यस्मिन्देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डो द्रुमायते' अर्थात् जिस देश में कोई वृक्ष नहीं होता उस देश में एरंड ही को बड़ा वृक्ष मान लेते हैं। वैसे ही यूरोप देश में संस्कृत विद्या का प्रचार न होने से जर्मन लोगों और मोक्षमूलर साहब ने थोड़ा सा पढ़ा वही उस देश के लिये अधिक है। परन्तु आर्यावर्त देश की ओर देखें तो उनकी बहुत न्यून गणना है। क्योंकि मैंने जर्मनी देशनिवासी के एक 'प्रिन्सिपल' के पत्र से जाना कि जर्मनी देश में संस्कृत चिट्ठी का अर्थ करने वाले भी बहुत कम हैं। और मोक्षमूलर साहब के संस्कृत साहित्य और थोड़ी सी वेद की व्याख्या देख कर मुझ को विदित होता है कि मोक्षमूलर साहब ने इधर उधर आर्यावर्तीय लोगों की हुई टीका देख कर कुछ-कुछ यथा तथा लिखा है।

'दाराशिकोह' बादशाह ने भी यही निश्चय किया था कि जैसी पूरी विद्या संस्कृत में है वैसी किसी भाषा में नहीं। वे ऐसा उपनिषदों के भाषान्तर में लिखते हैं कि मैंने अबी आदि बहुत सी भाषा पढ़ी परन्तु मेरे मन का सन्देह छूट कर आनन्द न हुआ। जब संस्कृत देखा और सुना तब निस्सन्देह हो कर मुझको बड़ा आनन्द हुआ है।

2 महर्षि दयानन्द के मत में ब्रह्मज्ञान

जो कुछ ब्राह्मणों के मुख में से वचन निकलता है वह जानो साक्षात् भगवान् के मुख से निकला। जब क्षत्रियादि वर्ण आँख के अंधे और गाँठ के पूरे अर्थात् भीतर विद्या की आँख फूटी हुई और जिनके पास धन पुष्कल है ऐसे-ऐसे चले मिले। फिर इन व्यर्थ ब्राह्मण नाम वालों को विषयानन्द का उपवन मिल गया। यह भी उन लोगों ने प्रसिद्ध किया कि जो कुछ पृथिवी से उत्तम पदार्थ हैं वे सब ब्राह्मणों के लिए हैं। अर्थात् जो गुण, कर्म, स्वभाव से ब्राह्मणादि वर्णव्यवस्था थी उसको नष्ट कर जन्म पर रक्खी और मृतकपर्यन्त का भी दान यजमानों से लेने लगे। जैसी अपनी इच्छा हुई वैसा करते चले। यहाँ तक किया कि 'हम भूदेव हैं'।

प्रश्न – जब यज्ञ करते हैं तब वेदों के मन्त्र पढ़ते हैं। जो वेदों में न होता तो कहाँ से पढ़ते ?

उत्तर – मन्त्र किसी को कहीं पढ़ने से नहीं रोकता क्योंकि वह एक शब्द है। परन्तु उनका अर्थ ऐसा नहीं है कि पशु को मारके होम करना। जैसे 'अग्नये स्वाहा' इत्यादि मंत्रों का अर्थ अग्नि में हवि, पुष्ट्यादिकारक घृतादि उत्तम पदार्थों के होम करने से वायु, वृष्टि, जल शुद्ध होकर जगत् को सुखकारक होते हैं। परन्तु इन सत्य अर्थों को वे मूढ़ नहीं समझते थे क्योंकि जो स्वार्थबुद्धि होते हैं वे केवल अपने स्वार्थ करने के दूसरा कष्ट भी नहीं जानते; मानते।

शंकराचार्य द्रविड़देशोत्पन्न ब्राह्मण ब्रह्मचर्य से व्याकरणादि सब शास्त्रों को पढ़ कर सोचने लगे कि अहह ! सत्य आस्तिक वेद मत का छूटना और जैन नास्तिक मत का चलना बड़ी हानि की बात हुई है; इनको किसी प्रकार हटाना चाहिए। शंकराचार्य शास्त्र तो पढ़े ही थे परन्तु जैन मत के भी पुस्तक पढ़े थे और उनकी युक्ति भी बहुत प्रबल थी। उन्होंने विचारा कि इनको किस प्रकार हटावें ? निश्चय हुआ कि उपदेश और शास्त्रार्थ करने से ये लोग हटेंगे। ऐसा विचार कर उज्जैन नगरी में आये। वहाँ उस समय सुधन्वा राजा था, जो जैनियों के ग्रन्थ और कुछ संस्कृत भी पढ़ा था। वहाँ जाकर वेद का उपदेश करने लगे और राजा से मिल कर कहा कि आप संस्कृत और जैनियों के भी ग्रन्थों को पढ़े हो और जैन मत को मानते हो। इसलिये आपको मैं कहता हूँ कि जैनियों के पण्डितों के साथ मेरा शास्त्रार्थ कराइये। इस प्रतिज्ञा पर, जो हारे सो जीतने वाले का मन स्वीकार कर ले। और आप भी जीतने वाले का मत स्वीकार कीजियेगा। सुधन्वा जैन मत में थे तथापि संस्कृत ग्रन्थ पढ़ने से उनकी बुद्धि में कुछ विद्या का प्रकाश था। इससे उनके मन में अत्यन्त पशुता नहीं छाई थी। क्योंकि जो विद्वान् होता है वह सत्याऽसत्य की परीक्षा करके सत्य का ग्रहण और असत्य को छोड़ देता है। जब तक सुधन्वा राजा को बड़ा विद्वान् उपदेशक नहीं मिला था तब तक सन्देह में थे कि इन में कौन सा सत्य और कौन सा असत्य है ! जब शंकराचार्य की यह बात सुनी और बड़ी प्रसन्नता के साथ बोले कि हम शास्त्रार्थ कराके सत्याऽसत्य का निर्णय अवश्य करावेंगे। जैनियों के पण्डितों को दूर-दूर से बुलाकर सभा कराई।

उसमें शंकराचार्य का वेदमत और जैनियों का वेदविरुद्ध मत था। अर्थात् शंकराचार्य का पक्ष वेदमत का स्थापन और जैनियों का खंडन और जैनियों का पक्ष अपने मत का स्थापन और वेद का खंडन था। शास्त्रार्थ कई दिनों तक हुआ। जैनियों का मत यह था कि सृष्टि का कर्ता अनादि ईश्वर कोई नहीं। यह जगत् और जीव अनादि है। इन दोनों की उत्पत्ति और नाश कभी नहीं होता। इससे विरुद्ध शंकराचार्य का मत था कि अनादि सिद्ध परमात्मा ही जगत् का कर्ता है। यह जगत् और जीव झूठा है क्योंकि वही उस परमेश्वर ने अपनी माया से जगत् बनाया; वही धारणा और प्रलय कर्ता है। और यह जीव और प्रपंच स्वप्नवत् है। परमेश्वर आप ही सब रूप होकर लीला कर रहा है। बहुत दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। परन्तु अन्त में युक्ति और प्रमाण से जैनियों का मत खण्डित और शंकराचार्य का मत अखण्डित रहा। तब उन जैनियों के पण्डित और सुधन्वा राजा ने वेद मत को स्वीकार कर लिया; जैनमत को छोड़ दिया। पुनः बड़ा हल्ला गुल्ला हुआ और सुधन्वा राजा ने अन्य अपने इष्ट मित्र राजाओं को लिख कर शंकराचार्य से शास्त्रार्थ कराया। परन्तु जैन का पराजय समय होने से पराजित होते गये।

पश्चात् शंकराचार्य के सर्वत्र आर्यावर्त देश में घूमने का प्रबन्ध सुधन्वादि राजाओं ने कर दिया और उनकी रक्षा के लिये साथ में नौकर चाकर भी रख दिये। उसी समय से सब के यज्ञोपवीत होने लगे और वेदों का पठन-पाठन भी चला। दस वर्ष के भीतर सर्वत्र आर्यावर्त देश में घूम कर जैनियों का खण्डन और वेदों का मण्डन किया। परन्तु शंकराचार्य के समय में जैन विध्वंस अर्थात् जितनी मूर्तियाँ जैनियों की निकलती हैं। वे शंकराचार्य के समय में टूटी थीं और जो बिना टूटी निकलती हैं वे जैनियों ने भूमि में गाड़ दी थीं कि तोड़ी न जाय। वे अब तक कहीं भूमि में से निकलती हैं।

शंकराचार्य के पूर्व शैवमत भी थोड़ा सा प्रचरित था; उसका भी खण्डन किया। वाममार्ग का खण्डन किया। उस समय इस देश में धन बहुत था और स्वदेशभक्ति भी थी। जैनियों के मन्दिर शंकराचार्य और सुधन्वा राजा ने नहीं तड़वाये थे क्योंकि उनमें वेदादि की पाठशाला करने की इच्छा थी। जब वेदमत का स्थापन हो चुका और विद्या प्रचार करने का विचार करते ही थे। उतने में दो जैन ऊपर से कथनमात्र वेदमत और भीतर से कट्टर जैन अर्थात् कपटमुनि थे; शंकराचार्य उन पर अति प्रसन्न थे। उन दोनों ने अवसर पाकर शंकराचार्य को ऐसी विषयुक्त वस्तु खिलाई कि उनकी क्षुधा मन्द हो गई। पश्चात् शरीर में फोड़े फुन्सी होकर छः महीने के भीतर शरीर छूट गया। तब सब निरुत्साही हो गये और जो विद्या का प्रचार होने वाला था वह भी न होने पाया। उनका प्रचार शंकराचार्य के शिष्य करने लगे। अर्थात् जो जैनियों के खण्डन के लिए ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या और जीव ब्रह्म की एकता कथन की थी उसका उपदेश करने लगे। दक्षिण में श्रृंगेरी, पूर्व में भूगोवर्धन, उत्तर में जोसी और द्वारिका में सारदामठ बांध कर शंकराचार्य के शिष्य महन्त बन और श्रीमान् होकर आनन्द करने लगे क्योंकि शंकराचार्य के पश्चात् उनके शिष्यों की बड़ी प्रतिष्ठा होने लगी।

प्रश्न – ब्रह्म में जगत् का भान किसको हुआ ?

उत्तर – जीव को।

प्रश्न – जीव कहाँ से हुआ ?

उत्तर – अज्ञान से।

प्रश्न – अज्ञान कहाँ से हुआ और कहाँ रहता है ?

उत्तर – अज्ञान अनादि और ब्रह्म में रहता है।

प्रश्न – ब्रह्म में ब्रह्म का अज्ञान हुआ वा किसी अन्य का और वह अज्ञान किसको हुआ ?

उत्तर – चिदाभास को।

प्रश्न – चिदाभास का स्वरूप क्या है ?

उत्तर – ब्रह्म। ब्रह्म को ब्रह्म का अज्ञान अर्थात् अपने स्वरूप को आप ही भूल जाता है।

प्रश्न – उसके भूलने में निमित्त क्या है ?

उत्तर – अविद्या।

प्रश्न – अविद्या सर्वव्यापी सर्वज्ञ का गुण है वा अल्पज्ञ का ?

उत्तर – अल्पज्ञ का।

प्रश्न – तो तुम्हारे मत में बिना एक अनन्त सर्वज्ञ चेतन के दूसरा कोई चेतन है वा नहीं ? और अल्पज्ञ कहाँ से आया? हाँ ! जो अल्पज्ञ चेतन ब्रह्म से भिन्न मानो तो ठीक है। जब एक ठिकाने ब्रह्म को अपने स्वरूप का अज्ञान हो तो सर्वत्र अज्ञान फैल जाय। जैसे शरीर में फोड़े की पीड़ा सब शरीर के अवयवों को निकम्मा कर देती है; इसी प्रकार ब्रह्म भी एकदेश में अज्ञानी और क्लेशयुक्त हो तो सब ब्रह्म भी अज्ञानी और पीड़ा के अनुभवयुक्त हो जाय।

उत्तर – यह सब उपाधि का धर्म है, ब्रह्म का नहीं।

ब्रह्म से इतर जीव सृष्टिकर्ता नहीं है क्योंकि इस अल्प, अल्पज्ञ सामर्थ्यवाले जीव में सृष्टिकर्तृत्व नहीं घट सकता। इससे जीव ब्रह्म नहीं।। 1।। 'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति' यह उपनिषद् का वचन है। जीव और ब्रह्म भिन्न हैं क्योंकि इन दोनों का भेद प्रतिपादन किया है। जो ऐसा न होता तो रस अर्थात् आनन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होकर जीव आनन्दस्वरूप होता है यह प्राप्तिविषय ब्रह्म और प्राप्त होने वाले जीव का निरूपण नहीं घट सकता। इसलिये जीव और ब्रह्म एक नहीं ।। 2।।

3 महर्षि दयानन्द के मत में शिक्षक का स्थान

वेदादि सत्य शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना, धार्मिक विद्वानों का संग; परोपकार, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, निर्वैर, निष्कपट, सत्यभाषण, सत्य का मानना; सत्य करना; ब्रह्मचर्य, आचार्य, अतिथि, माता, पिता की सेवा; परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना, उपासना; शान्ति, जितेन्द्रियता, सुशीलता, धर्मयुक्तपुरुषार्थ, ज्ञान-विज्ञान आदि शुभगुण कर्म दुःखों से तारने वाले होने से तीर्थ हैं और जो जल स्थलमय हैं वे तीर्थ कभी नहीं हो सकते क्योंकि 'जना यैस्तरन्ति तानि तीर्थानि' मनुष्य जिन करके दुःखों से तरें उनका नाम तीर्थ है। जल स्थल तराने वाले नहीं किन्तु डुबाकर मारने वाले हैं। प्रत्युत नौका आदि का नाम तीर्थ हो सकता है क्योंकि उनसे भी समुद्र आदि को तरते हैं।

जो ब्रह्मचारी एक आचार्य से और एक शास्त्र को साथ-साथ पढ़ते हों वे सब सतीर्थ अर्थात् समानतीर्थसेवी होते हैं। जो वेदादि शास्त्र और सत्यभाषणादि धर्म लक्षणों में साधु हो उसको अन्नादि पदार्थ देना और उनसे विद्या लेनी इत्यादि तीर्थ कहाते हैं। विद्वानों में विद्वान् होवे। दुष्ट कर्म और दुष्ट कर्म करने वालों को प्रयत्न से दण्ड और सज्जनों की रक्षा करे। इस प्रकार परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर परमेश्वर के गुण कर्म स्वभाव के अनुकूल अपने गुण कर्म स्वभाव को करते जाना ही परमेश्वर का नामस्मरण है।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।

गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।।

गुरुमाहात्म्य तो सच्चा है ? गुरु के पग धोके पीना, जैसी आज्ञा करे वैसा करना, गुरु लोभी हो तो वामन के समान, क्रोधी हो तो नरसिंह के सदृश, मोही हो तो राम के तुल्य और कामी हो तो कृष्ण के समान गुरु को जानना। चाहे गुरु जी कैसा ही पाप करे तो भी अश्रद्धा न करना। सन्त वा गुरु के दर्शन को जाने में पग-पग में अश्वमेघ का फल होता है। यह बात ठीक है वा नहीं ?

ठीक नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर और परब्रह्म परमेश्वर के नाम हैं। उसके तुल्य गुरु कभी नहीं हो सकता। यह गुरुमाहात्म्य गुरुगीता भी एक बड़ी पोपलीला है। गुरु तो माता, पिता, आचार्य और अतिथि होते हैं। उनकी सेवा करनी, उनसे विद्या शिक्षा लेनी देनी, शिष्य और गुरु का काम है। परन्तु जो गुरु लोभी, क्रोधी, मोही और कामी हो तो उसको सर्वथा छोड़ देना, शिक्षा करनी, सहज शिक्षा से न माने तो अर्ध पाद्य अर्थात् ताड़ना दण्ड प्राणहरण तक भी करने में कुछ भी दोष नहीं। जो विद्यादि सदगुणों में गुरुत्व नहीं है, झूठ मूठ कण्ठी तिलक वेदविरुद्ध मन्त्रोपदेश करने वाले हैं वे गुरु ही नहीं किन्तु गड़रिये जैसे हैं। जैसे गड़रिये अपनी भेड़ बकरियों से दूध आदि से प्रयोजन सिद्ध करते हैं वैसे ही शिष्यों के चले चेलियों के धन हर के अपना प्रयोजन करते हैं।

गुरु लोभी चेला लालची, दोनों खेलें दाव।

भवसागर में डूबते, बैठ पत्थर की नाव।।

गुरु समझें कि चले चेली कुछ न कुछ देवें हींगे और चेला समझे कि चलो गुरु झूठे सौगंद खाने, पाप छुड़ाने आदि लालच से दोनो कपटमुनि भवसागर के दुःख में डूबते हैं जैसे पत्थर की नौका में बैठने वाले समुद्र में डूब मरते हैं। ऐसे गुरु और चेलों के मुख पर धूड़ राख पड़े। उसके पास कोई भी खड़ा न रहे जो रहे वह दुःखसागर में पड़ेगा। जैसी पोपलीला पुजारी पुराणियों ने चलाई है वैसे इन गड़रिये गुरुओं ने भी लीला मचाई है। यह सब काम स्वार्थी लोगों का है। जो परमार्थी लोग हैं वे आप दुःख पावें तो भी जगत् का उपकार करना नहीं छोड़ते। और गुरुमाहात्म्य तथा गुरुगीता आदि भी इन्हीं लोभी कुकर्मी गुरुओं ने बनाई है।

4 महर्षि दयानन्द के मत में पाठ्यक्रम

अठारह पुराणों के कर्ता व्यास जी हैं। व्यासवचन का प्रमाण अवश्य करना चाहिये। इतिहास, महाभारत, अठारह पुराणों से वेदों का अर्थ पढ़ें पढ़ावें क्योंकि इतिहास और पुराण वेदों ही के अर्थ अनुकूल हैं। पितृकर्म में पुराण और हरिवंश की कथा सुनें। इतिहास और पुराण पंचम वेद कहाते हैं। अश्वमेघ की समाप्ति में दशमें दिन थोड़ी सी पुराण की कथा

सुनें। पुराण विद्या वेदार्थ के जनाने ही से वेद हैं। इत्यादि प्रमाणों से पुराणों का प्रमाण और इनके प्रमाणों से मूर्तिपूजा और तीर्थों का भी प्रमाण है क्योंकि पुराणों में मूर्तिपूजा और तीर्थों का विधान है।

जो अठारह पुराणों के कर्ता व्यास जी होते तो उनमें इतने गपोड़े न होते। क्योंकि शारीरक सूत्र, योगशास्त्र के भाष्य आदि व्यासोक्त ग्रन्थों के देखने से विदित होता है कि व्यास जी बड़ विद्वान्, सत्यवादी, धार्मिक, योगी थे। वे ऐसी मिथ्या कथा कभी न लिखते। और इससे यह सिद्ध होता है कि जिन सम्प्रदायी परस्पर विरोधी लोगों ने भागवतादि नवीन कपोलकल्पित ग्रन्थ बनाये हैं उनमें व्यास जी के गुणों का लेश भी नहीं था। और वेदशास्त्र विरुद्ध असत्यवाद लिखना व्यास जी सदृश विद्वानों का काम नहीं किन्तु यह काम विरोधी, स्वार्थी, अविद्वान् लोगों का है। इतिहास और पुराण शिवपुराणादि का नाम नहीं, किन्तु यह ब्राह्मण और सूत्रों का वचन है। ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ब्राह्मण ग्रन्थों ही के इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा और नाराशंसी ये पांच नाम हैं। (इतिहास) जैसे जनक और याज्ञवल्क्य का संवाद। (पुराण) जगदुत्पत्ति आदि का वर्णन। (कल्प) वेद शब्दों के सामर्थ्य का वर्णन अर्थ निरूपण करना (गाथा) किसी का दृष्टान्त दार्ष्टान्तरूप कथा प्रसंग कहना। (नाराशंसी) मनुष्यों के प्रशंसनीय वा अप्रशंसनीय कर्मों का कथन करना। इन ही से वेदार्थ का बोध होता है।

5 महर्षि दयानन्द के मत में स्त्री शिक्षा

जब वेद पढ़ने का सामर्थ्य नहीं रहा तब स्मृति, जब स्मृति के पढ़ने की बुद्धि नहीं रही तब शास्त्र, जब शास्त्र पढ़ने का सामर्थ्य न रहा तब पुराण बनाये, केवल स्त्री और शुद्रों के लिये। क्योंकि इनको वेद पढ़ने सुनने का अधिकार नहीं है। यह बात मिथ्या है। क्योंकि सामर्थ्य पढ़ने-पढ़ाने ही से होता है और वेद पढ़ने सुनने का अधिकार सब को है। देखो ! गार्गी आदि स्त्रियाँ और छान्दोग्य में जानश्रुति शुद्र ने भी वेद 'रैक्यमुनि' के पास पढ़ा था और यजुर्वेद के 26वें अध्याय के दूसरे मंत्र में स्पष्ट लिखा है कि वेदों के पढ़ने और सुनने का अधिकार मनुष्यमात्र को है। पुनः जो ऐसे-ऐसे मिथ्या ग्रन्थ बना लोगों को सत्यग्रन्थों से विमुख कर जाल में फंसा अपने प्रयोजन को साधते हैं वे महापापी क्यों नहीं ? देखो! ग्रहों का चक्र कैसा चलाया है कि जिसने विद्याहीन मनुष्यों को ग्रस लिया है।